षष्ठ अध्याय

मध्यकालीन मैथिली नाटक : मिथिला के कीर्तनियां नाटक ।

२. मिथिला के कीर्तनियां नाटक

जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय के आरंभ में कहा जा चुका है कि नेपाल में गोरखा-शासन की स्थापना के पश्चात् मैथिली एवं मैथिल - विद्वानों के लिये राज्याश्रय की परम्परा विनष्ट हो जाने के साथ ही साहित्य और संगीत के ह्रास का काल आ जाता है। अतएव उस विकसित और उज्ज्वल परम्परा का लहलहाता हुआ पौधा उपयुक्त आश्रय के अभाव में, नेपाल में, सूख जाता है। किन्तु इस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये मानो मिथिला प्रदेश में पुन: - पूर्वाविरूद्ध परम्परा उपर्युक्त काल के कुछ पूर्व से ही आरंभ हो जाती है, जैसा कि परवर्ती विवेचन से प्रकट है। मिथिला में कर्णाट वंश के शासन की स्थापना हो जाने से विद्वानों को आश्रय प्राप्त हो रहा था, किन्तु सतत् विधर्मियों के राजनीतिक संघर्ष के कारण अशान्ति रहा करती थी। इसलिये यहां के नाट्य-साहित्य की रचना की पृष्ठ भूमि के निर्माण में समसामयिक राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थियां भी उत्तरदायी हैं, जिन पर यहां संक्षेप में विचार कर लेना अपेक्षित है।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि ------- अकबर के समय से ही मिथिला की शासन-व्यवस्था पृथक् रूप से आरंभ हुई। सम्पूर्ण बिहार प्रान्त की महत्ता को दृष्टि में रखते हुए अकबरने इस प्रान्त को अपना प्रधान सूबा घोषित किया [१] और १५५६ ई. में महेश ठाकुर को मिथिला का राजा बनाया।[२] किन्तु इन स्वतंत्र राजाओं के ऊपर मुसलमानी

---

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़, - पृ. ४८७

२. वही, पृ. ५४६

शासन का अंकुश सतत् रहने के कारण इन्हें दुहरे उत्तरदायित्व का पालन करना पड़ता था । केन्द्रीय शासन के आदेश एवं इच्छाओं के निर्वाह के साथ ही, इन राजाओं को विभिन्न गवर्नरों के अभिमतों को ध्यान में रखते हुए सदैव उनके रूख के अनुकूल ही चलना पड़ता था । इस विवशता एवं तज्जन्य अव्यवस्था के कारण ये राजा अपने अधिकार क्षेत्र के विकास करने में असमर्थ थे ।

जहांगीर के शासन काल में ई.स.१६२२-२४ के आसपास अबदुल्ला-खां को हाजीपुर और दरभंगा जागीर के रूप में दे दिये गये ।[१] उसने इन क्षेत्रों में अमन-चैन रखने की पूरी कोशिश की, किन्तु आपसी कलह और द्वेष के कारण सफलता नहीं मिल पायी । औरंगजेब के काल तक अनेक परिवर्तनों के बाद अंतत: १६७७ ई. में तरबियत खां को दरभंगा के शासन का भार सौंपा गया । संघर्ष के कारण यह भी अधिक दिनों तक टिक नहीं सका । मुगल शासन के अंतिम दिनों में अलीवर्दी खांने अपनी चालाकी से अनेक हिन्दुओं की सहानुभूति और सहायता प्राप्तकर ई.स.१७३५-३६ के लगभग बेतिया तथा दरभंगा के राजाओं को कैद कर उन स्थानों पर अपना शासन स्थापित किया ।[२] यह मुसलमानी शासन की अंतिम अवस्था थी । एक ओर औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् से क्रमश: छिन्न-भिन्न होता हुआ अनेक राजनीतिक संघर्षों से वह निर्बल हो चुका था और दूसरी ओर आंग्ल शक्ति बंगाल और बिहार में अपना प्रभाव बढ़ाती जा

---

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़, पृ.४६३

२. वही, पृ.५०२

रही थी । कूट नीति के आधार पर ये आंग्ल व्यापारी कभी तो हिन्दू क्रांतिकारियों की सहायता करते और कभी मुसलमानी शासकों का पक्ष लेकर उन्हें निर्दयता से कुचलते भी थे । जब इन्होंने देखा कि शासक और शासित दोनों की शक्तियां एकदम क्षीण हो गयी है, तथा वे किसी भी प्रकार प्रतिकार करने में समर्थ नहीं हैं तो उन्होंने शासन में हस्तक्षेप कर के कालान्तर में उसे अपने अधिकार में कर लिया ।[१] अपने शासन की प्रारंभिक अवस्था में ही इन्होंने सम्पूर्ण बिहार में दीवानी और फौजदारी की नयी व्यवस्था शुरू की । औदयोगिक क्षेत्र न होने के कारण इन की दृष्टि उत्तर बिहार पर अधिक नहीं गयी, फिर भी यहां के शासन और राजा को अपने अधीन ही रखा ।

उपर्युक्त राजनीतिक पृष्ठ भूमि के साथ ही यहां की धार्मिक परिस्थितियां भी सम-कालीन नाट्य-साहित्य के विषय-वस्तु एवं रचना-विधान के दृष्टिकोण से एक सशक्त प्रेरणा-स्त्रोत के रूप में दृष्टि गोचर होती हैं । अत: उनकी भी संक्षिप्त चर्चा यहां आवश्यक है ।

<u>धार्मिक पृष्ठ भूमि</u> --------- मध्यकालीन मिथिला, हिन्दू धर्म के रक्षण तथा संस्कृत एवं शास्त्रीय ज्ञानार्जन के केन्द्र के रूप में प्रख्यात थी । इस समय यहां तांत्रिक पद्धति एवं विश्वास के आधार पर शिव, शक्ति तथा विष्णु की उपासना प्रचलित थी । इस प्रदेश के समकालीन

---

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़, पृ.५०६

विद्वानोंने शाक्त मत पर कतिपय ग्रंथों की रचना प्रस्तुत की, फलत: यहां के जन-सामान्य तक के दैनन्दिन जीवन में इस मत का प्रचार और प्रसार तीव्र गति से हुआ।[१] इस सिद्धान्त का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि समकालीन जीवन एवं साहित्य ही नहीं, प्रत्युत् आधुनिक कालीन जन-जीवन एवं साहित्य भी उसके विभिन्न उत्सों से अनुप्राणित हो रहे हैं, जो परवर्ती विवेचनों में नाट्य-साहित्य तथा उसमें प्रतिबिंबित जन-जीवन के अनुशीलन से प्रकट है। शक्ति के साथ ही, विभिन्न तांत्रिक ग्रंथों के आधार पर ही आशुतोष शिव की भी उपासना उसी रूप में प्रचलित हुई।

दूसरी ओर भक्ति-आन्दोलन एवं भागवत धर्म का प्रचार तथा जयदेव, उमापति और विद्यापति द्वारा प्रवर्तित राधाकृष्ण की विभिन्न लीला-विषयक सरस पदों के माध्यम से भक्ति-भावनाने जन-जीवन के भावनात्मक तारों को झंकृत किया, फलत: वैष्णव धर्म भी शिव-शक्ति की उपासना की धारा में समान रूप से प्रवाहित होने लगा। इस समय के पश्चात् से जन-जीवन के प्रत्येक प्रसंग पर शक्ति की प्रधानता के साथ त्रिमूर्तियों की वन्दना आवश्यक समझी जाने लगी। जैसा कि प्रथम अध्याय में कहा जा चुका है कि मिथिला में पंचदेवोपासना तथा ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के समन्वय के कारण कभी भी साम्प्रदायिकता अथवा देव विषयक हठवादिता का समावेश यहां के जीवन में नहीं होने पाया। स्मार्त शाक्त होते हुए भी यहां के विद्वानोंने समानरूप से सभी देवों की पूजार्चना की है। महेश ठाकुर,

----

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़, पृ. ४१०

सोलहवीं शती के केशव मिश्र तथा नरसिंह ठाकुर आदि विद्वानोंने[१] अपने ग्रंथों में गणेश, विष्णु, शिव, सूर्य आदि देवों की वन्दना की है, किन्तु शक्ति की प्रधानता पूर्वानुरूप ही स्थिर है । उपर्युक्त धार्मिक परिस्थितियों के परिपार्श्व में ही मिथिला के मध्यकालीन नाट्यकारोंने अपनी कृतियों के कथानकों में विभिन्न देवों का अनुकीर्तन किया है, किन्तु प्राय: सभी नाटकों में सर्वप्रथम मंगलाचरण के रूप में शक्ति की ही वन्दना की गयी है जो परवर्ती विवेचन से प्रकट है ।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के साथ मैथिली नाटकों की जो परम्परा कुछ काल के लिये टूट गयी थी उसे सर्वप्रथम महामहोपाध्याय गोविन्द (१६३६ ई. के आसपास)[२] ने जोड़ने का सत्प्रयास किया । इनके द्वारा पुनरावर्तन किये जाने पर कीर्तनियां नाटक की धारा अबाध गति से तब तक प्रवाहित होती रही, जब तक सामाजिक आवश्यकताओं की मांग एवं विभिन्न नवीन नाट्य-शैली के प्रति साहित्यकारों के आकर्षणोने उसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न नहीं कर दिया । इस स्थल पर नाट्यकार एवं उनकी कृतियों के विषय में कुछ लिखने के पूर्व, कीर्तनियां नाटक के स्वरूप, अभिनय, अभिनेता, अभिनय का समय, रंगमंच आदि के संबंध में चर्चा कर लेना अपेक्षित एवं प्रासंगिक है ।

<u>नाटकों का स्वरूप</u> -------- सत्रहवीं और अठारहवीं शदी के मैथिली-साहित्य में प्रधान रूप से दो विशेषताएं स्पष्टत: परिलक्षित होती हैं -- एक तो मैथिली भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया

---

१. देखिये, बिहार थ्रु द एजेज़, पृ.५२०

२. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ.२६४

और दूसरे, प्राचीन साहित्य के रूपों को, बिना किसी परिवर्तन एवं संशोधन के स्वीकार कर लिया गया। किन्तु आलोच्य काल में भी साहित्य के क्षेत्र में दो दल हो गये थे। परम्परावादी दलने किसी भी प्रकार के परिवर्तन को स्वीकार नहीं किया और नाटकों में प्रयुक्त भाषा-त्रयी में अपनी कवित्व-शक्ति के प्रदर्शन के लिये विभिन्न अलंकारों का प्रयोग कर उन में क्लिष्टता का समावेश कर दिया। दूसरी ओर सुधारवादी या यथार्थवादी वर्गने अपनी रचनाओं में सरल और सुबोध जन-भाषा के प्रयोग के साथ ही जन-गीतों को भी समाविष्ट किया। जन-मानस के अधिक निकट होने के कारण इन की लोकप्रियता बढ़ती गयी, परिणाम स्वरूप परवर्ती कीर्तनियां नाटकों में लोक-रूचि एवं रूढ़ि के अनुसार 'परिछनि', 'कोबर', 'नयना जोगिन', 'बटगमनी', 'चुमाओन', 'महेशवानी' आदि जन-प्रचलित लोक-गीतों को भी स्थान प्राप्त होने लगा। इसी लोकप्रियता की मांग के कारण, कृष्ण विषयक लीला तक ही कीर्तनियां नाटक का सीमित क्षेत्र, शिव-पार्वती और शक्ति के कीर्तन तक विस्तृत हो गया।[१] इन चरितों का अनुकरण पौराणिक आधार पर ही संभव था, अत: इसकाल के नाटकों की कथा वस्तु के लिये विभिन्न पौराणिक आख्यानों को ही आधारभूत रूप में स्वीकार करना अनिवार्य था।

इन आख्यानों को अंगिकार करने की पृष्ठभूमि में और भी अन्य संभावित कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम तो चली आती हुई परम्परा का पालन, मौलिक चिन्तन का अभाव, संस्कृत भाषा के

---

१. बिहार थ्रु द एजेज़, पृ.७३३

प्रति आकर्षण एवं भक्ति, मैथिली भाषा के प्रति उदासीनता एवं उपेक्षा और द्वितीयत: मुसलमानी शासन में उत्पन्न सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक संघर्ष एवं तज्जन्य निराशा, जिसके कारण समस्त उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन द्वारा प्रवर्तित सांस्कृतिक पुनर्जागरण के परिणाम स्वरूप जन जीवन के बीच भक्ति का वातावरण भी निर्मित हो चुका था । तीसरी बात यह भी थी कि उस समय शासकों की विलासिता के कारण धर्म-कर्म एवं आस्तिकता की नींव हिलने लगी थी । भौतिकता के प्रति आकर्षित होकर जन-सामान्य अपने धर्म के प्रति उदासीन हो रहा था । अत: प्रत्येक दिशा से धर्म की रक्षा आवश्यक समझकर समकालीन भक्तकवियों एवं मनीषियोंने अपनी कृतियों द्वारा जन सामान्य में भक्ति भावना को जागृत करना प्रारंभ किया । यही कारण है कि समस्त देश के मध्यकालीन साहित्य में भक्ति भावना के कारण एक सूत्रात्मकता पायी जाती है । मिथिलावासी आदि काल से ही कट्टरपंथी रहे हैं, अत: यहां के साहित्यकारोंने कृष्ण एवं शिव-शक्ति की विभिन्न लीलाओं के अनुकीर्तन से भक्ति-भावना का प्रचार किया । इन चरितों को नाट्यरूप देने का कारण यह था कि ये रंगमंच पर प्रस्तुत होकर एकसाथ ही चाक्षुष प्रत्यक्ष और हृदयानुभूति के माध्यम से जन-मानस पर गहरा एवं अमिट प्रभाव उत्पन्न कर सकते थे ।

तत्कालीन समाज में अशिक्षा अधिक थी -- उच्चकुल तक ही शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था थी । अत: कथावस्तु को अधिक जटिल एवं रहस्यपूर्ण बना देने से, भक्ति-रस और दृश्य काव्य के आनन्द को प्राप्त करने के स्थान पर जन-मानस उस उलझन में ही व्यस्त रह

जाता । अतएव कीर्तनियाँ नाटकों में आवान्तर या प्रासंगिक कथाओं का तथा नाट्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों का समावेश नहीं किया गया । नाट्यकारों का प्रधान उद्देश्य संगीत और नृत्य द्वारा ईश्वरार्चन से आत्म-तुष्टि की अनुभूति और जन-हृदयों में धार्मिक भाव को उद्बुद्ध करना था । इसलिये दृश्य-विधान, रंगनिर्देश, पंचकार्यावस्था, संधियाँ, प्रकृति का निर्वाह, नाटकीय कौतूहल एवं चरित्र का मनोवैज्ञानिक विकास आदि तथ्यों पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना लोकप्रियता और मनोरंजनकारी रूप को बल मिला, जिसे हम परवर्ती विवेचन में स्पष्ट करेंगे । अतएव उपर्युक्त कारणों के प्रकाश में प्राचीन इतिवृत्त की ही प्राय: पुनरावृत्ति होती रही । घुणाचार न्यायेन यदि इन नाटकों में कुछ नाटकीय तत्वों का समावेश हो भी गया है, तो भी इन की सफलता या असफलता की आलोचना अथवा निरीक्षाण-परीक्षाण करना उपयुक्त नहीं है । समकालीन रंगमंचीय एवं अन्य विषम परिस्थितियों के रहने पर भी कीर्तनियाँ नाट्य-साहित्यने सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्तिकर उसके समक्ष एक आदर्श की स्थापना की, जो उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण सफलता है ।

जैसा कि कहा जा चुका है कि मुसलमानी शासन काल में रंगमंच की परम्परा विनष्ट हो चुकी थी और राज्याश्रय के अभाव में उसका पुनरूद्धार भी संभव नहीं था । अत: कीर्तनियाँ-नाटक-मंडली खुले मैदान में ही आवश्यकता के अनुसार चौकी का रंगमंच बनाकर अभिनय प्रस्तुत किया करती थी, जिसका अवशिष्ट रूप इस युग में भी मिथिलांचल में विद्यमान है । पश्चात् इनहीं नाटकों

के आधार पर मिथिला में रंगमंच का सहज ही विकास हुआ और उस में एक नवजीवन भी आ गया । दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि उस समय कुशल और निपुण अभिनेताओं का भी नितान्त अभाव था । श्री कृष्णकान्त मिश्र[१] के अनुसार एक सफल अभिनेता की सब से बड़ी विशेषता यह होती थी कि वह 'मान', 'नचारी', 'तीरहुति' आदि गा सकता था और रंगमंच पर संकेतादि करने की क्रिया जानता था । किन्तु किसी पात्र विशेष का सजीव चित्रण या अभिनय इन की शक्ति से परे का कार्य था । सामाजिकों को इन प्रसंगों का ज्ञान परंपरा से रहता ही था या यदाकदा वे अनुमान से भी समझ लिया करते थे । संस्कृत विद्या के केन्द्र एवं रूढ़िवादिता के कारण तत्कालीन मिथिला के उच्चवर्गीय लोगों के लिये संस्कृत के प्रति मोह और दृढ़ परम्परा का त्याग असंभव था । दूसरी ओर जन-सामान्य संस्कृत तथा प्राकृत भाषा को समझने में असमर्थ था । उस समय मैथिली भाषा व्यक्तिगत भक्ति-भावना के प्रकटीकरण और स्वाभाविक प्रेम के सहज उद्गार के रूप में प्रयुक्त होती थी ।[२] भाव और काव्य दोनों ही हृदय की वस्तु हैं । अतएव नाट्यकारोंने जन-हृदय को स्पर्श करने के लिये अपने नाटकों में सरस एवं सरल गीतों को भी समाविष्ट किया है । इससे स्पष्ट है कि इस समय के नाट्यकारों को रंगमंच, अभिनेता और विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं उनकी रूचियों को दृष्टि में रख कर ही अपनी रचना प्रस्तुत करनी पड़ती थी, जो अत्यन्त दुष्कर कार्य था । इन्हीं कठिनाइयों की ओर संकेत करते हुए भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' ने लिखा है कि

---

१. मैथिली साहित्यक इतिहास, पृ.१७२
तुलनीय -- हमारी नाट्य परंपरा - पृ.२४४

२. बिहार थ्रू द एजेज़, पृ.५४६

"यह बात निर्विवाद है कि मिथिला के वे छोटे छोटे नाटक इन नटों की परिधि को दृष्टि में रखकर अभिनय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लिखे गये । साथ ही सर्व साधारण, विशेषत: महिला दर्शकों का भी ख्याल रखना पड़ा । मैथिल अपनी संस्कृत छोड़ना नहीं चाहते थे, साथ ही उन्हें अपनी मातृभाषा का भी ध्यान था । अत: सभी रचनाएं उभय पद्धतिय हुईं । नाटकों की भाषा को कवित्व के आडम्बरों से बचाकर सरल रखना पड़ा । एवं कथा भाग भी उलझन तथा विस्तार की सीमा से दूर रहा । कवि को इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता था कि वह जो कुछ लिख रहा है वह सर्व साधारण के बोध की वस्तु रहे, स्वल्प साधनों से थोड़े समय में सफलता पूर्वक अभिनीत किया जा सके । आनन्दपूर्वक सब तरह के रुचिवालों के लिये संतोष-साधक साथ ही कवित्व से खाली भी न हो ।"[१]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कीर्तनियाँ नाटकों की रचना समकालीन विभिन्न परिस्थिति एवं जन-रुचि को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत की गयी थी । इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन शास्त्रीय नाट्य-शैली के प्रति मोह तथा जन-नाट्य-शैली की लोकप्रियता की द्विधा के कारण इन नाटकों में दोनों प्रकार की शैलियों का अद्भुत समन्वय हुआ है । नान्दी, प्रस्तावना, भरत वाक्य आदि में शास्त्रीय शैली का अनुकरण किया गया है । नांदी के अंत में सूत्रधार "अलमति विस्तरेण" कहता हुआ रंगमंच पर प्रवेश करता

---

१. आनन्द विजय नाटिका की भूमिका

है और नाटककार, नाटक के नाम, विषय वस्तु तथा आश्रयदाता का वर्णन प्रस्तुत करता है। जिस अवसर विशेष पर उस नाटक के अभिनय का आयोजन किया गया है, इस की सूचना दर्शकों को देता हुआ वह अपनी प्रियतमा अथवा विदूषक को बुलाकर अभिनय संबंधी बातें करने लगता है। कभी कभी इनके वार्तालाप के व्याज से नाटक का प्रारंभ भी हो जाता है। नाटक के अंत में सभी अभिनेता रंगमंच पर समुपस्थित होकर एक स्वर से संस्कृत के श्लोक अथवा मैथिली के गीत -- कभी कभी दोनों ही -- के द्वारा समाज कल्याण के लिये प्रार्थना करते हैं, जो भरतवाक्य का ही रूपान्तार है।

प्रत्येक पात्र के प्रवेश पर 'प्रवेश गीत' द्वारा उसकी सूचना सामाजिकों को दे दी जाती है। उस गीत में संबंधित पात्र का पूर्ण परिचय --- वेश-भूषा, अंग-विन्यास, मनोभाव, चरित्रगत विशेषता, व्यक्तित्व एवं प्रसंगोपयुक्त वृत्ति --- प्रस्तुत किया जाता है। इस से प्रकट है कि ये प्रवेशगीत आधुनिक नाटकों के सदृश रंगनिर्देश का कार्य सम्पादित करते हैं। इन नाटकों में कथावस्तु के सूच्य अंश -- तपस्या, विवाह, युद्ध, भोजन, स्नान आदि -- को गीतों के माध्यम से ही सामाजिकों को सूचित किया जाता है। कभी कभी दूरस्थ कथा-प्रसंगों की कड़ी को जोड़ने का कार्य भी गीतों से लिया जाता है। ये विभिन्न प्रकार के गीत किसके द्वारा गाये जांय, इसका स्पष्ट उल्लेख नाटकों में प्राप्त नहीं होता। साधारणतः जन नाटकों में भागवत, व्यास या तटस्थ सामाजिकों के समक्ष कथा के तारतम्य का निर्वाह तथा अन्य सूचना प्रस्तुत करता रहता है। इस आधार पर इन नाटकों के सूत्रधार को वही स्थान देकर कुछ विद्वानोंने यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि ये विभिन्न प्रकार के गीत सूत्रधार के द्वारा ही गाये जाते हैं।

इस के विपरीत प्रस्तुत निबंध के लेखक का मन्तव्य है कि ये गीत सूत्रधार के द्वारा नहीं अपितु रंगमंचस्थ वाद्यकारों के द्वारा गाये जाते हैं। नेपाल के मैथिली नाटकों के स्वरूप की चर्चा करते समय यह संकेत किया जा चुका है कि वहां के नाटकों में भी एतत् संबंधी गीत रंगमंचस्थ वाद्यकारों के द्वारा ही गाये जाते हैं। शास्त्रीय नाट्य-शैली के अनुकरण पर इन नाटकों का सूत्रधार अपनी प्रियतमा के साथ नायक-नायिका के मुख्याभिनय को प्रस्तुत करने के लिये साजसज्जा के हेतु प्रस्थान करता है। दूसरी बात यह भी है कि शास्त्रीय नाट्य शैली में कतिपय तथ्यों की सूचना, सामाजिकों को, नेपथ्य से ही दे दी जाती है। एक अन्य विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि आधुनिक काल में मिथिलाञ्चल में प्रचलित जन-नाट्यों में (यथा~~सल हेस्क~~ नाच) रंगमंचस्थ वाद्यकार ही गीतों के माध्यम से कतिपय तथ्यों की सूचना और कथा के तारतम्य का निर्वाह करते रहते हैं। कीर्तनियां नाट्यशैली में शास्त्रीय और जन-नाट्य रूपों का समन्वय है। इन दो तथ्यों के आधार पर ही यह सिद्ध नहीं होता कि ये गीत सूत्रधार द्वारा गाये जाते हैं। अतएव ये विभिन्न प्रकार के गीत निश्चित् रूप से रंगमंचस्थ वाद्यकारों के द्वारा ही गाये जाते होंगे।

इन नाटकों का अभिनय किसी उत्सव विशेष पर रात्रि के समय हुआ करता था। किसी समृद्धशाली व्यक्ति के दरवाजे पर उपनयन, विवाह आदि के प्रसंगों पर इनका अभिनय होता था। खुले मैदान में सुविधानुसार चौकियों से ही रंगमंच तैयार कर लिया जाता था जिसके पिछले भाग को कपड़ों से घेर कर रंगभवन का काम

लिया जाता था । पर्दों के अभाव में कभी कभी चद्दर से भी काम चला लिया जाता था । विभिन्न अवसरों पर अर्ध व्यावसायिक मंडली इन नाटकों का अभिनय किया करती थी । उस समय मिथिला में किसी भी प्रकार के नाटक के अभिनेताओं के दल को 'जमाति' और उसके प्रधान व्यक्ति को 'नायक' कहा जाता था और अभिनय के समय वही व्यक्ति नाटक का भी नायक होता था । डा. जयकान्त मिश्र[1] के अनुसार इस जमाति में सभी जाति और वर्ग के लोग इसमें समान रूप से सम्मिलित होते थे जिनकी संख्या १० से १५ तक रहती थी । इस जमाति की सदस्यता के लिये केवल इतनी ही योग्यता पर्याप्त थी कि सम्मिलित होनेवाला व्यक्ति मधुर कंठ से विभिन्न प्रकार का लोकगीत गा सके । इस मंडली में स्त्री पात्र का सामान्यभाव था, अत: पुरूष ही स्त्री पात्रों का अभिनय कर लिया करते थे । यह प्रथा आधुनिक काल में भी प्रचलित है । अर्ध व्यावसायिक होने के कारण यह मंडली भाड़े पर भी अभिनय किया करती थी जिसके लिये 'साटा' के रूप में अग्रिम शुल्क भी ले लिया करती थी । जितने दिनों तक अभिनय का कार्यक्रम चलता रहता था उतने दिनों तक की भोजन - व्यवस्था उस व्यक्ति को करनी पड़ती थी जिसके यहां वह कार्यक्रम चलता था । सार्वजनिक स्थानों में सार्वजनिक व्यवस्था की जाती थी ।

प्रो. कृष्णकान्त मिश्रने एतद्विषयक जो अन्य तथ्य प्रस्तुत किये हैं, उन्हें संक्षेप दिया जा रहा है[2]। नाटक के प्रारंभ होने पर

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ. २८८

२. मैथिली साहित्य के इतिहास (मैथिली ग्रंथ) पृ. २७४

जमाति का नायक सूत्रधार के रूप में जामा, नीमा, पैजामा, पादुका, गाढा - पाग, और चद्दर ओढ़कर हाथ में फूलहत्था लिये रंगमंच पर आता था और अपनी विद्वता के प्रदर्शन के लिये कभी कभी मंगल श्लोक या अन्य श्लोकों का अशुद्ध रूप में भी, अन्वय, समास आदि की बौछार करते हुये अपनी नाट्य कला का परिचय दर्शकों को दिया करता था। इस जमाति में सफल अभिनय के लिये नाटक की एक रंगमंच - प्रतिलिपि भी रहती थी। अभिनेताओं में पात्रों का वितरण कर उनसे अभ्यास भी करवाया जाता था। कीर्तनियां नाटक होने के कारण नाटकीय संगीत के दोनों ही रूप-मौखिक और वाद्य- का प्रायश: प्रयोग होता था। दर्शकों में उत्सुकता जागृत करने के लिये, उन्हें चमत्कारिक ढंग से आकर्षित करने के लिये कृत्रिम गरूड़ और ऐरावत का आगमन प्रदर्शित किया जाता था।[१] रसिक जनों को रिफाने के लिये नायिका का शृंगार रस - भाव पूर्ण गीतों का समावेश तथा अशिक्षित दर्शकों के लिये विदूषक (विपटा) के विभिन्न प्रकार की फूहड़ एवं भद्दी मजाक का प्रयोग किया जाता था। आधुनिक युग के जन-नाट्यों में भी इसकी उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों पर निर्दिष्ट कीर्तनियां नाटकों के परम्परा वादी और दूसरे सुधारवादी इन दोनों दलों के समक्ष विभिन्न प्रकार

----

१. जतबाटा पात्रक लम्बाई रहै छलैक ततबेटा बनल तत्रवस्तु होइ छल ओ पृष्ठ भाग में दुहा सवारक पात्र पैस्वा योग्य भूरकसल रहै छलैक। भूर में पात्र पैसाय अपन घघरा प्रभृति वस्त्र संफांपि दै छलैक। तत्रवस्तुक बलवा कमे अपन पात्रक संचालन तेना करै छलैक जे देखनिहार कें बोध होइत छलैक जे हाथी वा गरूड़ पीठ पर सवार नेने चलि रहल अछि। चमत्कार रहै छलैक।
(ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर भाग १, पृ. २६१ पाद टिप्पणी)

के दर्शकों की अभिरूचि की तुष्टि करते हुई लोकप्रियता प्राप्त करने की समस्या थी । इन्होंने अपने अपने सिद्धान्त के मार्ग का अनुसरणाकर उसका समाधान भी प्रस्तुत किया । इन्हीं दो भिन्न मार्ग के कारण कीर्तनियां नाटको के दो रुप हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं । प्रथम रूप में कथोपकथन में संस्कृत और प्राकृत तथा गीतों में मैथिली का प्रयोग हुआ है । द्वितीय रूप में संस्कृत-प्राकृत का बहिष्कार किया गया है, वैसे यत्र तत्र रंगनिर्देश के रूप में संस्कृत का प्रयोग अवश्य हुआ है । इस दूसरे रूप में कथोपकथन भी नहीं है, गीतों के माध्यम से ही कथावस्तु का विकास होता है । इस रूप को भावनाट्य कहना अधिक उपर्युक्त जान पड़ता है । डो. जयकान्त मिश्र के अनुसार प्रथम रूप की रचना विद्वन्मंडली एवं राजदरबार के लिये हुई और द्वितिय रूप जन साधारण के लिये रचे गये ।[१]

<u>नाटककार तथा उनकी कृतियां --------</u>

मध्यकाल में मिथिला के अंतर्गत जिन नाटककारों ने अपनी कृतियां प्रस्तुत की हैं उनका अब तक उपलब्ध **सामग्री** के आधार पर संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है । उपर्युक्त विवेचन से कीर्तनियां नाटक के स्वरूप, रंगमंच, अभिनय और अभिनेता की विशेषता स्पष्ट हो जाती है । अब उन नाट्यकारों के संबंध में चर्चा कर लेना आवश्यक है जिन्होंने अपनी कृतियों के द्वारा इस परम्परा के विकास एवं समृद्धि में योग दान दिया है । विद्यापति के पश्चात् , "गोविन्द तत्व निर्णय" नामक तांत्रिक ग्रंथ के रचयिता महामहोपाध्याय गोविन्दने सर्व ही प्रथम इस खंडित परम्परा को शृंखलित करने का प्रयास किया यह

---

१. वही, पृ. ३५८

पीछे कह आये हैं । इनका समय ई.स.१६३६-४० के आसपास है ।[१] इन्होंने 'नलचरित' नाटक की रचना की । इसी नाटक से गीतों का नाटकीय प्रयोग प्रारंभ होता है । इनके पश्चात् 'आनन्द विजय नाटिका' के कर्ता रामदासजी का नाम लिया जाता है । ये कुलीलिबार मखरौनी कुल में उत्पन्न हुवे थे और इनका समय ई.स.१६४४-७१ माना गया हैं ।[२] तृतीय देवानन्द दक्षिण मिथिला के निवासी थे । इन्होंने 'उषाहरण' नाटक की रचना की, जिसकी हस्त लिखित प्रति खंडित रूप में ही प्राप्य है । इनका समय सतरहवीं शती का उत्तरार्द्ध और अठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है ।[3]

इसके पश्चात् महाराज नरेन्द्रसिंह (१७४४-६१)[४] के राज्याश्रय में रमापति उपाध्याय और लाल कविने अपनी रचना प्रस्तुत की । उमापति के पश्चात् नियमित कीर्तनियां नाट्यकार के रूप में सर्वाधिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता रमापति उपाध्याय को ही प्राप्त हो सकी । इनकी ख्याति का आधार इनकी रचना 'रुकिमणी परिणय' है । 'गौरी स्वयंवर' के कर्ता लाल कवि को भी कुछ कम लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई । भाषा और लोककथा का आधार इस रचना की अपनी निजी विशेषता है ।

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ.२६४
२. वही, पृ.२६६
३. वही, पृ.२६६
४. वही, पृ.३११

इनके पश्चात् नन्दीपति को भी समान रूप से ही लोकप्रियता प्राप्त हुई । 'कृष्ण केलि माला' नामक नाटक इनके नाम से उपलब्ध होता है । ये महाराज माधवसिंह के समसामयिक थे । अतः इनका समय ई.सन् १७७६-१८०८ निर्धारित किया जा सकता है ।[१] महाराज माधवसिंह के ही राज्यकाल में तीन अन्य नाट्यकार भी हुये । गोकुलानन्दने 'मान चरित', शिवदत्तने 'पारिजात हरण' एवं 'गौरी परिणय' तथा कर्ण जयानंदने 'रुक्मांगद' नाटक की रचना प्रस्तुत की । अंतिम नाटक खंडित रूप में ही प्राप्य है ।[२] 'श्री कृष्ण जन्म रहस्य' नाटक के रचयिता श्रीकान्त गणक का समय, उनकी भाषा के आधार पर उन्नसवीं शदी का मध्यभाग (१८५० के आसपास) माना गया है, जो कि डो.जयकान्त मिश्र के अनुसार भविष्य पुराण पर आधारित है ।[३] कान्हारामदासने ई.सन् १८४२ में 'गौरी स्वयंवर' नाटक की रचना की ।[४] 'हर गौरी विवाह' पर प्राप्य मैथिली के सभी नाटकों में इसका स्थान सर्वोच्च निर्धारित किया जा सकता है ।

रत्नपाणि नाट्यकार के साथ ही बहुत बड़े धर्मशास्त्री और कर्मकांडी भी थे । इन दोनों विषयों पर इनके अनेक ग्रंथ भी उपलब्ध हैं । अपने नाटकों में इन्होंने अपनी विद्वता और कुशलता प्रदर्शित की है ।

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ.३२३

२. वही, पृ.३२८-३३

३. वही, पृ.३३४

४. वही, पृ.३३६

कथा-वस्तु के विन्यास एवं वर्णन सौष्ठव में इनकी दक्षता तथा सावधानी प्रशंसनीय है । इनके नाटकों के गीतों से ऐसा प्रतीत होता है कि ये भक्ति एवं शान्त रस के उपासक हैं । इन्होंने महाराज महेश्वरसिंह के राज्यकाल (१८५०-६०)[१] में 'उषाहरण' नाटक की रचना की । इसी काल में मध्यकाल के अंतिम कीर्तनियां नाट्यकार भानुनाथ झा ने भी 'प्रभावती हरण' नाटक लिखा ।

नाट्यकारों के परिचय के पश्चात् अब कुछ कृतियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

१. आनन्द विजय नाटिका -------- इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं ; एक राजप्रेस दरभंगा का संस्करण और दूसरा वैशाली प्रेस मुजफ्फरपुर का संस्करण जो क्रमश: महेश झा और भुवनेश्वरसिंह 'भुवन' द्वारा सम्पादित हैं । राजप्रेस संस्करण को ही प्रस्तुत अध्ययन का आधार बनाया गया है । प्रस्तुत नाटिका चार अंकों में विभक्त है ।

शिवशक्ति की वन्दना से इसका प्रारंभ होता है । कथा के नायक माधव के हृदय में, अपने मित्र आनन्दकन्द से राधा का सौंदर्य वर्णन सुनते ही प्रेम का अंकुर पनपने लगता है । प्रियतमा के रूप में प्राप्त करने की उत्सुकता इतनी बढ़ जाती है कि वे अपने मित्र से उनके साथ गुप्त मिलन के लिये निवेदन करने लगते हैं । आनन्दकन्द ज्योतिषी के वेष में, कुंज में अपनी सखियों के साथ

----

१. ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ.३४१

बैठी हुई राधा के समक्ष उपस्थित होकर, अतिथि सत्कार के पश्चात् कहते हैं कि आज 'माधवासित - चतुर्दशी' है और इस तिथि में 'आरचित धूलिकदम्ब' के फूलों से गौरी-शंकर की पूजा से अभिमत की सिद्धि अवश्य ही होती है । राधिका अपनी सखियों के साथ कुसुम-चयन के लिये वाटिका में जाती हैं । उस समय उनके सौंदर्य का वर्णन इन शब्दों में किया गया है ।

तनु अनुपम रे वदन सानन्द, दामिनि उपर उगल जिमि चंद ।
नासालसित नयन नहि थीर, जनि तिल फुल अलि दुहु दिस फीर ।
अधर सं ढरया दसन घन ज्योति, नवदल बेढ़लि जनि गजमोति ।
भांगि जाइत कुच भर परिनामें , तें दहुं तिबलि गुणे बांधलिकामे ।
सरस राम मन राधा रूप, रस बुझ रसमय सुन्दर भूप ।।[१]

कुसुम चयन में संलग्न राधा के रूप को देखकर माधव का हृदय और भी अधिक निकटता एवं परवशता का अनुभव करने लगता है । वे कहते हैं ---------

आलि समाहित कुसुमादानाञ्जलि ललित बाहु युग कपटात् ।
मन्ये काञ्चन लतिके प्रसूति के कपुण्डरीकेन ।। [२]

इसी बीच आनन्दकन्द हाथ में छड़ी लेकर उस वाटिका के रक्षक के वेश में आते हैं और राधा सहित उनकी सखियों को,

----

१. प्रस्तुत नाटिका, पृ.१२

२. वही, पृ.१६

अनुमति बिना फूल-चयन के कारण डांटने लगते हैं । वाचाला नाम की सखी निर्भिकता और वाचालता से कहती है --------

जहिकर भुजयुग दापे, सकल सुरासुर कापे ।
एसन भूपति कंस राना, तसु बालह बृषमाना ।
तसु कुमारि विवाही, कोने बल छेकह ताही ।
केलि कदम अभिरामे, कत युग लग एहि ठामे ।
दिन दशकेर मधाइ, कादे परितन्हि हलुआइ ।
वारि वारि एताए कानन, का बढ़ाबह दन्द ओ ।
के न जानए उग्रशासन, कंस भूपइ मन्द ओ ।
सूनि पावत कोंहैं धावत, बेढ़ि गोकुल गाए ओ ।
नन्द राए राधा ए राखत, कोनो लेव कुढ़ाए ओ ।[१]

इस उत्तर से उन्हें क्रोध हो आता है और होठों को दांतों से काटते हुवे उनकी ओर ऐसे देखने लगते हैं मानो बिना दण्ड दिये उन्हें जाने नहीं दिया जायेगा । नम्र वाणी में विनय करती हुवी राधा उन से कहती हैं -----

निरनय दुरनय ताजन हम कर व्यवहारे ।
नजानल राख कादम्ब फूल गिरि नन्द कुमारे ।
सखि भोर सुबुधि कहल जत कटु वचन अधारे ।
खेमिअ खेमिअ दुज भूषन तिरिजन अपराधे ।
रात अपराधहुं बड़ जन नहि करए निदाने ।
मथनहुं सिंधु नहि उपटए जग के नहि जाने ।[२]

----

१. प्रस्तुत नाटिका, पृ.२०
२. वही, पृ.२२

आनन्दकन्द आनन्द से राधा को आशीर्वाद प्रदान करने लगते हैं। अकस्मात् एक शार्दूल ⊗ तत्क्षण ही माधव उस जन्तु से सखी की रक्षा करते हैं। राधा-माधव में दृष्टि विनिमय हो रहा है और वे दोनों मूक-भाषा में ही भावों का आदान-प्रदान करने लगते हैं। किन्तु बलराम के आगमन से दोनों प्रेमी हृदय विकल-वेदना लेकर ही विदा होते हैं।

राधा वहां से गौरी-शंकर की अर्चना के लिये चली जाती है। प्रत्यक्ष होकर अर्द्धनारीश्वर उन्हें विलम्ब से कार्यसिद्धि का वरदान देते हैं। राधा तो प्रथम दर्शन में ही विवश होकर अपना हृदय अर्पित कर चुकी हैं, अत: विरह से वे व्यथित हो रही हैं। क्षणभर के मिलन के अवसर पर लज्जा के कारण न तो वे अपने प्राणाधिक प्रियतम के रूप-सुधा का पान कर सकीं और न कुछ संभाषण ही कर सकीं। अत: उनके हृदय में ये स्मृतियां शूल के समान चुभ रही हैं। अपनी सखी से वे कहती हैं -----

केलि कदम्बतर सामर देहा, हेरइतें जागल हृदय विदेहा।
बांके निहारलन्हि वदन हमारा, फूलल कमल जनि पड़ल भमरा।
मधुर संभाषन कएलन्हि हंसी, अमिअ वरिस जनि शारद शशी।
तखनुक अवसर की कहब सखी, चरण ससारल गुरू जन देखी।
मनहुंक मनधरो हम पुन काले, उत्तर ने देल रहल हिअ साले।
सुन धनि सरस राम एहो गारे, सुघर प्रेम रस दुहुं दिस धारे।[1]

---

१. प्रस्तुत नाटिका, पृ. ३४-३५

⊗ के आजाने से वे सभी भयभीत होकर छिपने का प्रयास करते हैं किन्तु ...

एक कापालिक आकर उन्हें सांत्वना देते हुये कहता है कि अर्द्धनारीश्वरने उस से राधा-माधव मिलन का प्रयास करने का आदेश दिया है । वह राधा से कहता है कि वे उस निर्देशित कुंज में चलें जहां पर अचिरेण प्रियतम से भेंट हो सकती है । इस शुभ समाचार से आश्वस्त होकर भावी मिलन-सुख का काल्पनिक आनन्द लेती हुयी राधा उक्त कुंज की ओर प्रस्थान करती है ।

इन दो प्रेमी हृदयों का प्रेम एकांगी नहीं है । माधव भी विरहाग्नि की ज्वाला से अकुलाहट का अनुभव कर रहे हैं । चन्दन-लेप से दाह में वृद्धि ही होती है । विरह-पीड़ित माधव अपनी व्यथा मित्र से कह रहे हैं -------

मलय समीरन परसल मोर, देह दाह उपजावए घोर ।
हिमकर बमए गरल सम तेज, दहन गहन सम सरसिज सेज ।
बरिस सार घनसार कलाप, प्राण हुं ताहि परम उपताप ।
सरस राम मन बुफ अनुरूप, प्राणवती पति सुन्दर भूप ।[१]

इसी समय वाचाला नाम की सखी उन्हें राधा के आगमन की सूचना देती है और उनकी विरह-दशा का वर्णन करती हुई अविलम्ब ही कुंज में राधा से मिलने का अनुरोध भी करती है । अत्यधिक उत्सुकता से वहां पहुंचकर माधव अपनी प्रेयसी को आलिंगन में ले लेते हैं । दो चिर-विरही हृदय परस्पर एक हो जाते हैं ।

---

१. प्रस्तुत नाटिका, पृ.४१

समीक्षा -------- जन नाट्य शैली पर रचित प्रस्तुत नाटिका में कुछ शास्त्रीय तत्वों का निर्वाह भी पाया जाता है । नान्दी, प्रस्तावना और भरत वाक्य का रूप निश्चित ही शास्त्रीय है । ऐतदतिरिक्त पंचकार्यावस्थाओं का निर्वाह भी हुआ है । प्रारंभ नामक कार्यावस्था में नायक के मन में किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है । प्रथम अंक में राधा के सौंदर्य का वर्णन सुनकर माधव के हृदय में उन्हें प्राप्त करने की लालसा जागृत होती है और वे अपने मित्र से कहते हैं कि "यथा मे नयन पथमेति तथा विधीयताम्"[1]

द्वितीय अवस्था प्रयत्न है, जिसमें नायक उस वस्तु विशेष को प्राप्त करने के लिये विभिन्न साधनों का उपयोग कर उद्योगशील बनता है । प्राप्ति के मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएं भी उपस्थित होती हैं । प्रस्तुत नाटिका में आनन्दकन्द के वचन से[2] यह अवस्था शुरू होती है और इसकी स्थिति उस समय तक बनी रहती है जब राधिका अर्द्धनारीश्वर की पूजार्चना के लिये जाती हैं ।

तीसरी अवस्था का नाम प्राप्याशा है । इस स्थिति में आकर वस्तु-प्राप्ति की दिशा तो निश्चित् हो जाती है किन्तु

----

१. प्रस्तुत नाटिका, पृ.१०

२. भावि दिने भवता केली कदम्ब सन्निहित माधवी लतान्तरितेन स्थेयं, मयापि वेषान्तरेण कल्पित कदम्ब कुसुमावचयबोधक श्रुतिं श्रावयित्वा सखीभि: सह राधां प्रेषयित्वा त्वया समेत्य स्थेयम् । (पृ.११)

संदिग्धता बनी ही रहती है। अर्द्धनारीश्वर के वरदान से[1] इसका प्रारंभ होता है और कापालिक के आगमन के पूर्व तक इसकी स्थिति रहती है।

चौथी अवस्था नियताप्ति है जिसके अन्तर्गत वस्तु-प्राप्ति नियत हो जाती है। कापालिक अर्द्धनारीश्वर के आदेश पर कुंज में, योगबल से दोनों के मिलन की प्रतिज्ञा करता है जिससे मिलन की दिशा निश्चित् हो जाती है। अंत में दोनों प्रेमी-हृदयों का मिलन होता है जो फलागम की स्थिति है।

प्रस्तुत नाटिका का नाट्य-परंपरा की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व होते हुए भी इसमें कथावस्तु एवं कीर्तन के तत्व नगण्य हैं। प्रेम तथा शृंगार के गीतों को ही इन चरित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। डॉ. जयकान्त मिश्र के मतानुसार इन गीतों में भी विद्यापति का असफल अनुकरण ही दृष्टिगोचर होता है।[2]

२. रुक्मिणी परिणय -------- कीर्तनियां नाट्यशैली में उमापति उपाध्याय कृत 'पारिजात हरण' के पश्चात् प्रस्तुत नाटक को ही सर्वाधिक लोक प्रियता प्राप्त हो सकी। इसके विभिन्न गीत अनेक संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं और विद्यापति के गीतों के समान ही जन-कंठों में सुरक्षित भी हैं। इसके 'नचारी' और 'महेशवानी'

---

१. अभिमत भाजनं भविष्यसि किन्तु विलम्बेन।
(पृ. ३२)

२. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ. २६६

तो बहुत ही भक्ति भाव पूर्ण और प्रसिद्ध हैं । प्रस्तुत नाटक से कीर्तनियां शब्द की सार्थकता एवं उस शैली पर नाट्य रचना का प्रयोजन तो स्पष्ट हो ही जाता है किन्तु साथ ही इसमें कीर्तनियां नाटक के सभी लक्षणों का निर्वाह भी पाया जाता है । नाट्यकार अपनी दुर्बलताओं से भली भांति परिचित है ; अत: वह उन के कल्मषों के परिमार्जनार्थ भक्ति-भाव से विह्वल होकर अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को सर्वात्मा के चरणों में अर्पित कर देता है और दीन वाणी में निर्मल अचल भक्ति की याचना करता है । अतएव प्रचलित कृष्ण के काव्यात्मक रूप के स्थान पर उनके सर्वशक्तिमान और सर्वात्म स्वरूप की ही चर्चा की गई है । इस नाटक का प्रत्येक सहृदय पात्र कृष्ण के इसी रूप की वन्दना करता है । महाराज भीष्मकी उक्ति दुहराते हुये द्विजराज कहता है -----

> नमोस्तु तस्मै जगदीश्वराय सृजत्यवत्यत्त्यखिलं चराचरम् ।
> भारावताराय भुवोधुना हरि र्लब्ध्वावितारो वसुदेव मन्दिरे ।।[१]

इससे विदित होता है कि नाट्यशैली के माध्यम से भगवत् चरितों का अनुकीर्तन करना ही नाट्यकार का प्रधान उद्देश्य है । इस नाटक में वर्णित शृंगारिक गीतों के अंत में नाट्यकार केवल भक्ति दान की याचना करते हुये प्रणति का ही निवेदन करता है । अतएव स्पष्टत: प्रतीत होता है कि प्रस्तुत नाटक की रचना करने में रमापति का लक्ष्य, सर्वात्मा का अनुकीर्तन एवं भक्ति-भाव से शरणापन्न होकर

---

१. प्रस्तुत नाटक, पृ.४४

अपने जीवन को सफल बनाना ही है। इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है --------

अन्य कीर्तनियां नाटकों के सदृश प्रस्तुत नाटक का भी प्रारंभ शिव-शक्ति की वंदना से ही होता है। महाराज भीष्मक अपनी कन्या रूक्मिणी के पाणि ग्रहण के लिये चिन्तित हैं। इस संबंध में विचार-विमर्श के हेतु वे अपनी रानी का स्मरण करते हैं। रूक्मिणी भी अपनी माता के साथ आती हैं। यहां नाट्यकार इनके रूप - सौंदर्य का, बड़े ही सरस और आकर्षक ढंग से, एक प्रवेश गीत के द्वारा, वर्णन करता है।[१]

विचार - विनिमय के पश्चात् महाराज इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रूक्मिणी के लिये सभी दृष्टियों से कृष्ण ही उपयुक्त हो सकते हैं। किन्तु इसके विपरीत युवराज रूकमद का मन्तव्य है कि चेदिराज शिशुपाल से संबंध स्थापित करने से ही कुल की प्रतिष्ठा रह सकती है। उस विवाद के निर्णय के लिये दो 'घटकों' को बुलाकर श्रीकृष्ण और शिशुपाल के कुल का परिचय पूछा जाता है।

---

१. वही, पृ.१८-१९

गमने विनिन्द मरालक नारि, संगे जननि चलु राजकुमारि।
नख-रूचि-गंजित नूतन चंद, चरणे विलज्जित थल अरविन्द।
करि-कर पावन उर जंग भास, तें गिरिकन्दर करए निवास।
विपुल नितम्ब मध्य कटि खीन, करतल अरुण कमल छबिहीन।
भुज जुग कनक - मृडालक तूल, कम्बू कंठ नासा तिल फूल।
अधर विनिन्दित विम्ब प्रवाल, कुन्द कोरक-सम दसन विसाल।
लए खंजन - जुग उग हिम धाम, तओ तसु आनन दीज उपाम।
चामर नहि तसु चिकुर समान, रूकुमिनि रूप रमापति भान।

इसमें भी कृष्ण के प्रति अपने पिता का पक्षपात देखकर युवराज रुष्ट होकर वहां से जाने के लिये उद्यत हो जाते हैं । परिस्थिति को संभालते हुये महाराज उनसे कहते हैं कि क्षत्रियों के लिये स्वयंवर की प्रथा है, अत: सभी राजाओं को आमंत्रित कर स्वयंवर की ही व्यवस्था की जाय । युवराज संतुष्ट होकर तदनुसार ही आयोजन करते हैं । एक ब्राह्मण को इसी निमित्त मथुरा भेजा जाता है । समाचार ज्ञात कर बलरामादि स्वयंवर में उपस्थित होने की व्यवस्था करने के लिये प्रस्थान करते हैं । एकान्त में श्रीकृष्ण उस ब्राह्मण से रूक्मिणी के रूप - सौंदर्य के विषय में जिज्ञासा प्रकट करते हैं । उनके अत्यधिक आग्रह और उत्सुकता के कारण वह तीन गीतों में अत्यन्त रोचक ढंग से रूक्मिणी के अपूर्व-अद्भुत रूप - लावण्य का वर्णन प्रस्तुत करता है । इस स्थल पर नाट्यकार का कवि हृदय भावुकता से उद्वेलित हो उठता है और भाव शवलता के कारण वह अपना कौशल प्रदर्शित करने के लोभ को संवरण नहीं कर पाता है । इन गीतों में एक ही उपमेय के लिये विभिन्न उपमानों का ऐसे सरस एवं स्वाभाविक रीति से प्रयोग किया गया है कि सहृदयों का हृदय अनायास ही अतीन्द्रिय शृंगार रस से आप्लावित हो जाता है । यद्यपि इनमें विद्यापति का सफल अनुकरण स्पष्टत: परिलक्षित होता है तथापि ये गीत नाट्यकार की कवित्व शक्ति और विद्वता के ही परिचायक हैं ।

श्रीकृष्ण ससैन्य महाराज भीष्मक की राजधानी आते हैं और रथारूढ़ होकर नगरी की शोभा का अवलोकन कर रहे हैं । वे सप्रयोजन शंख-ध्वनि करते हैं जिसे सुनकर रूक्मिणी अपने सौध के

गवाक्ष से उत्सुकतावश नीचे दृष्टि करती हैं । प्रथम दर्शन में ही कृष्ण के अनुपम सौंदर्य के प्रभाव से मन ही मन वे अपने अस्तित्व को कृष्ण के चरणों में समर्पित कर देती हैं । श्रीकृष्ण अपनी एक झलक से रुक्मिणी के हृदय में प्रेम-शिखा प्रज्वलितकर, विदर्भ नरेश क्रथकौशिक के राजभवन में ससैन्य विश्रामार्थ आ जाते हैं । विदर्भ नरेश के लिये श्रीकृष्ण इष्ट देव स्वरूप हैं ; अत: इनके आगमन से उन्हें स्वर्ग - सिंहासन - प्राप्ति सदृश आनन्द होता है । उनके सत्कार में वे, कुंडिनपुर के स्वयंवर में आये हुए राजाओं को आमंत्रित कर, उनके समक्ष ही विदर्भ का सिंहासन श्रीकृष्णार्पण करते हैं । प्रफुल्लित मन सभी नरेश श्रीकृष्ण को प्रणति निवेदन कर प्रस्थान करते हैं । एकान्त में रुक्मिणी - परिणय के रहस्य को स्पष्ट करते हुये श्रीकृष्ण महाराज भीष्मक से कहते हैं कि देवर्षि नारद के कथनानुसार देवोंने लक्ष्मी से प्रार्थना की कि वे मर्त्यलोक के महाराज भीष्मक की पुत्री होकर अवतार ग्रहण करें । कृष्ण रूप में अवतरित भगवान विष्णु से इनका पाणिग्रहण होगा, जिस संबंध से देवों के कार्य सिद्ध होंगे ।[1] इस अनुकूल समाचार को

---

१. मेरु-शिखर भए कमलासन लए सुजान करल विचार ।
भीषाम नृप तनया भय कमला अवनि लेथु अवतार ।।
ता सओं हरि परिनय जहि होएत बहुत होएत सुरकाज ।
ई बुझि हमर निकट उपगत भए भाषि गेल मुनिराज ।।
से सुनि भीषाम देव महामति दृढ़ भए धएल धेआन ।
विश्वरूप माधव तनु पेखल लेखल मने नहि आन ।।
भीषाम नृपति उकुति यदुपति सओं सुमति रमापति भान ।
सिंह नरेन्द्र सकल अवनीपति बुझ सब गुनक निधान ।।
(पृ. ६३-६४)

ज्ञात कर श्रीकृष्ण के आदेश से महाराज तत्काल ही स्वयंवर को स्थगित करने का दृढ़ विचार करते हैं । श्रीकृष्णजी तत्क्षण ही विहगराज का स्मरण कर आदेश देते हैं कि सिंहासन की प्राप्ति एवं स्वयंवर - विघटन से असंतुष्ट शिशुपाल, जरासंधादि से रक्षार्थ, विश्वकर्मा की सहायता से वे द्वारिकापुरी का निर्माण करें ।

कृष्ण की अनुपस्थिति में रूक्मिणी विरह-व्याकुला हो जाती हैं । चांद की शीतलता और दक्षिण पवन के स्पर्श से उनकी विरह - ज्वाला प्रज्वलित ही होती है । एक तो वेदना से उनका हृदय स्वयं ही अकुला रहा है, दूसरे भौंरो की गुंजार एवं कोयल की मधुर पुकारने और भी अधिक काम-पीड़ा उत्पन्न कर दी है, जिससे वे दशमावस्था के निकट पहुंच रही हैं ।

नारद श्रीकृष्ण का मन्तव्य बताते हुये महाराज भीष्मक से कहते हैं कि शिशुपाल के साथ ही रूक्मिणी के विवाह का आयोजन किया जाय जिससे अभिमत - सिद्धि की संभावना हो सकती है । तदनुसार ही सारी व्यवस्था की जाती है । रानी को इस समाचार से अधिक आघात लगता है किन्तु इसे दैवविधान मानकर रूक्मिणी को अलंकृत करने चली जाती हैं । कोमल हृदया रूक्मिणी इस आघात को सहन नहीं कर पाती हैं और संज्ञा - शून्य होकर गिर पड़ती है । इसी समय नारद उनके समीप आते हैं और सांत्वना देते हुए उनकी मनोभिलाषा जानने के जिज्ञासा प्रकट करते हैं । रूक्मिणी अपनी एकाग्र निष्ठा व्यक्त करती हुई नारद से कहती हैं -------

१६५

मुनिवर करिअ तहिन परकार ।
नगर द्वारका गए पुनुआनिअ तोरित नंदकुमार ।। ध्रु. ।।

दनुजमनुज अवतार महीतल चेदि नृपति शिशुपाल ।
कुमरि जोहल वर से जहि गहतकर जीव तेजब ततकाल ।।

तीनि भुवनपति अनुगत जनगति करूणामय गोपाल ।
एमु चितवर हमें मने अवधारल तेजि सकल महिपाल ।।

गिरि - नन्दिनी पूजय हम जायब बाहर देब अगार ।
तखने गहथुकर देव गदाधर तेहि परजक्षि सुविचार ।।

सानन्द भए मुनिराजें कहल पुनुमने जनु मानिअ आन ।
नृप कूमरि अभिलाष पुरत तुअ सुमति रमापति मान ।।

(पृ. ७७)

नारद उन्हें पूर्ण आश्वासन और मनोरथपूर्ण का आशीष देकर प्रस्थान करते हैं । नेपथ्य से सूचना दी जाती है कि रूक्मिणी गौरी-पूजन के लिये जा रही हैं, अत: शिशुपाल के पक्ष के सभी राजा उनके रक्षार्थ उनका अनुसरण करें । इस घोषणा को सुनकर बलराम भी अपने सैन्य को सज्जित होकर गौरी-मंदिर के लिये प्रस्थान करने का आदेश देते हैं । पूजोपरान्त रूक्मिणी जब बाहर आती हैं तो नारद सहर्ष कृष्ण से कहते हैं कि इस समय इनके अकथनीयसौंदर्य के प्रभाव से सभी वीर अपने रथों पर कामबाण से पीड़ित अस्त - व्यस्त रूप दीख रहे हैं, अत: इनके हरण का यही सुअवसर है । संकेत मिलने पर श्रीकृष्ण गरूड़ के सहाय्य से उन्हें रथ पर बैठाकर वहां से प्रस्थान करते हैं ।

इस आकस्मिक घटना से राजाओं के मध्य कोलाहल होने लगता है और वे श्रीकृष्ण का पीछा करने की योजना बनाने लगते हैं। क्रोधावेश में युवराज रुक्मद प्रतिज्ञा करते हैं कि या तो वे श्रीकृष्ण को यमपुर भेजेंगे या कभी भी कुण्डिनपुर वापस नहीं आयेंगे। वे एकाकी ही रथारूढ़ होकर कृष्ण के पीछे दौड़ते हैं, किन्तु उनके वायुवेग - गामी रथ तक नहीं पहुंच पाते। बलराम उन नरेशों को युद्ध में परास्त कर रुक्मद को बन्दी बनाकर द्वारका आते हैं। उनके आदेश से कृष्ण - रुक्मिणी का परिणय सविधि सम्पन्न होता है। युगल प्रेमी केलिभवन में मिलते हैं।

समीक्षा -------- प्रस्तुत नाटक में मैथिली संस्कृति एवं लोक-विधियों की सुन्दर झांकी प्राप्त होती है। इस नाटक में शास्त्रीय पद्धति एवं लोक-जीवन का सुंदर समन्वय किया गया है। मिथिलांचल में किसी भी शुभ प्रसंग पर शक्ति के अनुसार नान्दी श्लोक की व्यवस्था की और 'गोसाउनिक गीत' के द्वारा लोक-परम्परा का भी निर्वाह किया। मिथिला में आज भी यह प्रथा है कि जब लड़की विवाह के योग्य हो जाती है तो कहा जाता है कि अब कन्या दस वर्षों की हो गई। प्रस्तुत नाटक में भी रानी कहती हैं कि --"कुमरि हमरि जलधि दुहिता सनि, वरख दस ताहि", इसीलिये 'घटकों' को बुलाकर विवाह का उद्योग अविलम्ब ही किया जाना चाहिये। घटकों की प्रथा भी मिथिला की ही विशेषता है। कृष्ण - रुक्मिणी का विवाह तो मैथिल - पद्धति के अनुसार ही सम्पन्न होता है ---'परिछनि', 'चुमाओन', 'दुर्वाक्षत', 'कोबर', 'बटगमनी', 'तीरहुति' सभी का तो समावेश हुआ है।

इस नाटक की प्रसिद्धि और लोकप्रियता में इन लोक-व्यवहारों का पूर्ण योग दान है । अत: इसमें संदेह नहीं कि ऐसे नाटक जन-जीवन के अन्तस्तल तक पहुंचकर उनके भावों को चिरकाल के लिये उद्वेलित कर देते हैं ।

प्रस्तुत नाटक रुक्मिणी परिणय में पंच कार्यावस्थाओं का निर्वाह सम्यक् रूप में हुआ है । प्रथम अंक के महाराज और रानी के मध्य संभाषण में रुक्मिणी परिणय का विचार स्थिर होता है जो प्रारंभिक अवस्था है । इसी अंक के अंत से प्रयत्न नाम की दूसरी अवस्था आरंभ होती है और चतुर्थ अंक के मध्य तक इसकी स्थिति रहती है । इस अंक में श्रीकृष्ण एक गीत के द्वारा महाराज भीष्मक से कहते हैं कि रुक्मिणी के रूप में साक्षात् लक्ष्मीने ही आपके घर अवतार लिया है, अत: हरि के साथ ही उनका परिणय होगा । योग बल से महाराज को ज्ञात हो जाता है कि कृष्ण ही हरि हैं । अत: वे आशावान हो जाते हैं । अतएव इस गीत से प्राप्त्याशा का प्रारंभ होता है और पूजन के पश्चात् रुक्मिणी हरण के प्रसंग पर इसकी समाप्ति होती है । यहां से नियताप्ति की अवस्था शुरू होती है और छठे अंक के नारद के इस वचन से कि "भगवन् श्रीकृष्ण ! जितं वलदेवेन अन्यैरपि तावकै:" इसकी समाप्ति होती है । इसके पश्चात् फलागम है । श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का परिणय सम्पन्न होता है । प्रथम अंक में बीज नामक अर्थ प्रकृति की स्थिति है जो क्रमश: विस्तार होता गया है, वह विन्दु है । आवान्तर प्रसंगो के अभाव में पताका की स्थिति नहीं है किन्तु विदर्भ नरेश का प्रसंग अवश्य ही प्रकरी है । कृष्ण-रुक्मिणी का परिणय कार्य है ।

उपर्युक्त विवेचना से इस नाटक का महत्व और लोकप्रियता का कारण स्पष्ट हो जाता है। कीर्तनियां नाटकों में इसका स्थान द्वितीय है।

३. गौरी स्वयंवर ------- प्रस्तुत नाटक के दो संस्करण उपलब्ध हैं जो क्रमश: उपेन्द्र झा और डा. जयकान्त मिश्र द्वारा सम्पादित हैं। इन दोनों संस्करणों में अनेक विभिन्नताएं पायी जाती हैं। प्रथम में प्रस्तावना और अंक का उल्लेख नहीं है किन्तु द्वितीय में है। प्रथम में सूत्रधार यह कहता हुआ कि "तदलं नटनारम्भ विलम्बेन श्री गौरीशंकर प्रवेशकं कृत्वा निवर्तयाम:" रंगमंच से प्रस्थान करता है। शिव का प्रवेश होता है। तपोवन में वे ध्यानस्थ हैं। पार्वती अपनी सखियों के साथ प्रवेश करती हैं और शिव के अद्भुत रूप एवं उनकी विचित्र लीला देखकर उन पर मोहित हो जाती है। एक गीत के द्वारा सूत्रधार तारकासुर के वध के निमित्त गौरीशंकर के विवाह का होना निश्चित् बताता है। इसके पश्चात् मदन-दहन और रति विलाप का दृश्य आता है; तदनन्तर पार्वती तपस्या, शिव के ब्रह्मचारी वेष, एवं विवाह का वर्णन किया गया है।

इसके विपरीत द्वितीय संस्करण - डा. मिश्र के संस्करण में सूत्रधार के प्रस्थानानंतर ही मदन-दहन एवं रति विलाप का दृश्य प्रस्तुत किया गया है और पश्चात् क्रमश: तपोवन में शिव पर पार्वती का आकर्षित होना, उनकी प्राप्ति के लिये तपस्या, शिव के ब्रह्मचारी वेष तथा गौरी-शंकर के विवाह के प्रसंगो का वर्णन किया गया है।

उपर्युक्तता की दृष्टि से प्रथम संस्करण ही मौलिक प्रतीत होता है । गौरी के प्रवेश के पहले ही मदन-दहन के दृश्यका आ जाना और पश्चात् शिव पर मोहित होकर प्राप्ति के लिये तपस्या करने का कुछ तात्पर्य नहीं रह जाता है । जब वे परस्पर आकर्षित हैं ही तो तपस्या किसके लिये ? अतएव पार्वती जब अपनी आंखों से काम को भस्म होते देखती हैं तो उनका भौतिक आधार छिन्न-भिन्न हो जाता है और कठिन साधना के अभाव में उनकी प्राप्ति असंभव जानकर ही वे तपश्चर्या करती हैं । इसके पश्चात् दोनों परस्पर प्रीति-बंधन में आ जाते हैं और परिणय-सूत्र में बंध जाते हैं जो अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है और इसकी पुष्टि कुमार संभव से भी होती है । कुमार संभव में मदन - दहन से निराश होकर ही पार्वती तपस्या में प्रवृत्त होती हैं ।

प्रस्तुत नाटक की कथा वस्तु प्रख्यात ही है । इसका कथा-प्रवाह इस द्रुतगति से अग्रसरित होता है कि कथा-प्रसंगों से अपरिचित व्यक्ति के लिये उसके तारतम्य का निर्वाह कर तादात्म्य स्थापित करना बहुत ही कठिन हो जाता है । इसकी रचना विशुद्ध लौकिक पद्धति पर हुई है । गौरी-शंकर के विभिन्न गीत 'महेशवानी', नचारी, 'परिछनि' आदि के रूप में मिथिला में अति प्राचीन काल से ही प्रचलित रहे हैं । इन्हीं लोक-गीतों के आधार पर इसकी रचना हुई है । अतएव इसमें स्वभावत: विशुद्ध भक्ति भाव का समावेश हो गया है । सूत्रधार के जन नाटकीय स्वरूप का जो वास्तविक निखार इसमें प्राप्त होता है वह अन्य नाटकों में नहीं मिलता है ।

यथार्थवादी होने के कारण नाट्यकारने अधिक से अधिक जन सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश की है । विभिन्न प्रकार के प्रचलित लोक गीतों का समावेश, संस्कृत-प्राकृत का बहिष्कार और अन्तस्तल में पैठकर, भावों को उद्‌बुद्धकर गीति नाट्य-शैली के माध्यम से जन साधारण को भक्ति की ओर उन्मुख करने की पृष्ठ भूमि में उपर्युक्त भावना की ही प्रेरणा है । इसमें रंगनिर्देश तथा क्रिया - कलापों की सूचना देने मात्र के लिये संस्कृत का प्रयोग हुआ है । प्रस्तुत नाटक के अध्ययन से दो तथ्य स्पष्ट रूप में हमारे समक्ष आते हैं - एक तो कीर्तनियां शैली में शिव का समावेश और दूसरा पद्यरूप में भी मैथिली अपना संपूर्णत: आधिपत्य स्थापित करती है । एक बात और उल्लेखनीय है कि इसमें रंगनिर्देश नहीं है और जितना कथानक इसमें मिलता है उससे यह भी संभावना की सकती है कि कदाचित गौरी और शंकर के विवाह से संबंधित लोक गीतों को बाद में नाटक का रूप दे दिया गया है । मिथिला में गौरी-शंकर के विवाह संबंधी अनेक कवियों द्वारा रचित न जाने कितने गीत दीर्घकाल से प्रचलित हैं ।

४. कृष्ण-केलि-माला

प्रस्तुत नाटक के नाम से ही स्पष्ट ज्ञात होता हैं कि इसमें कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है । प्रथम तथा द्वितीय अंको में कृष्ण जन्म, पूतना वध, शकट-भंजन, ऊखल बंधन, यमलार्जुन-उद्धार, दधि-माखन चोरी, मुख में ही चौदहों भुवन का दर्शन, वकासुर वध, अघासुर वध, ब्रह्मा का मोहनाश,

१७१

गोवर्धन धारण, कालिय दमन आदि लीलाओं का वर्णन एक-एक गीत में संकेत मात्र से ही प्रस्तुत किया गया है । तृतीय अंक में चीर-हरण लीला, दधि लीला, और मान लीला का सरस एवं आकर्षक वर्णन किया गया हैं । चतुर्थ अंक में रासलीला का वर्णन है किन्तु दो पृष्ठों के उपरान्त ही सभी मूल प्रतियां खंडित रूप में ही प्राप्त हैं । इसके अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि शृंगारिक प्रसंगों में ही नाट्यकार का मन रमता है । प्रस्तुत नाटक एक गीति नाट्य है किन्तु इस में नंदीपति एक नाट्यकार से अधिक कवि रूप में ही हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं । इनके गीतों में विधापति, उमापति, रमापति आदि पूर्ववर्ती कवियों की ही वाणी प्रतिध्वनित होती है । यमुना तीर पर एकाकिनी राधा को देखकर श्रीकृष्ण के मन में विकार आ जाता है और वे हीन-कातर वाणी में उनसे आलिंगन की याचना करते हैं । इसके उत्तर में राधा अपनी विवशता के व्याज से स्वीकृति बताती हुई निम्न-लिखित गीत कहती हैं जिस गीत पर विधापति का प्रत्यक्ष प्रभाव है ----

सखि सबे परिहरि गेली, ऐसनि विपति मोहि भेली ।
हमें एकसरि जलमांझ, पड़ले अबहुक सांझ ।
आंबे की करब परकार, मोरे लेखे भेल अन्धार । [1]

---

१. प्रस्तुत नाटक, पृ.३६

छोडु छोडु आंचर मोरा, माधव मोर निहोरा ।
किए बिलमावह मोही, भूल न कहत केओ तोही ।। [१]

निम्नलिखित पद तो शब्दश: विद्यापति के हैं किन्तु कविने बड़ी कुशलता से अंतिम पंक्ति में "नन्दीपति कवि मान" जोड़कर उस गीत पर अपने नाम का मुहर लगा दिया है -----

आव उचित नहि मान ।। ध्रु. ।।
एखनुक रीति हम जेहुन देखि, जागल पै पचवान ।
कुसुमा रचित सेज दीपक थिर न रहए गेआन ।
तखनुक धैरज घरए न पबिअ सुनि सुनि पिक निक गान ।
जूड़ि रैनि चकमक कर चानिनि एहन समय नहि आन ।
एहन समए पहु मिलन जेहन थिक जकरहि हो से जान ।
त्रिवलि तरंग शिताशित संगम उरज शंभु निरमान ।
आरति पहु प्रतिग्रह अंकछ करू घनि सर्वस दान ।
कुसुम कुसुम कत विलसि विलासिनि अलि मालति करु मधुपान ।
अपन अपन पहु सबहु जेमाओल भूषाहल तुअ भेजमान ।
हम कि कहब सखि तो है कमलमुखि अपनहि करू समधान ।
संचित मदन वेदन अति दारूण नन्दीपति कवि मान ।। [२]

----

१. प्रस्तुत नाटक, पृ.४८ - तुलनीय
विधापति -----
सखि सब तेजि चलि गेली, न जानू कोन पथ मेली, कन्हैया ।
हम न जायब तुअ पासे, जायब औघट घाटे, कन्हैया ।।
छाडु कन्हैया मोर आंचर रे, फाटत नव सारी ।
अपजस होएत जगत भारि है, जनि करिअ उघारी ।।
संगक सखि अगुआइलि रे, हम एकसरि नारी ।
दामिनि आए तुलाएल है, एक राति अंधारी ।।
पद ५८-५६ पृ.८५-८६

२. प्रस्तुत नाटक, पृ.६३-६४

१०३

तुलनीय विद्यापति -------

मानिनि आब उचित नहि मान ।
एखनुक रंग एहन सन लागइछ,
जागल पए पैचवान ।।
जूड़ियनि चकमक करू चांदिनि,
एहन समय नहि आन ।
एहि अवसर पिय-मिलन जेहन सुख,
जकरहि होए से जान ।।
रभसि रभसि अलि विलसि विलसि करि,
करए मधुर मधुपान ।
अपन अपन पहु सबहु जेमाओलि,
भूखल तुअ जजमान ।।
त्रिवलि तरंग सितासित संगम,
उरज संभु निरमान ।
आरति पति मंगइछ परतिग्रह,
करू धनि सर्वस दान ।।
दीपक-दिप सम थिर न रहयमन,
दृढ़ करू अपन गेआन ।
संचित मदन वेदन अति दारून,
विधापति कवि मान ।।[१]

----

१. विद्यापति की पदावली पद १४७, पृ.१६५

अत: इन्होंने विधापति का ही अनुकरण कर रसिक जनों को रिझाने का प्रयत्न किया है । इससे ऐसा भी प्रतीत होता है कि कवि की अतृप्त और कुंठित वासना ही शृंगारिक गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है । इसी नाटक में शृंगारेतर प्रसंगों के उपस्थित होने पर कविने उनकी उपेक्षा कर दी है ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में विवेचित सुमतिजितामित्र मल्ल देव कृत 'कालिय मथन' में कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को जिस रीति से प्रस्तुत किया गया है वैसा वर्णन इसमें नहीं उपलब्ध होता है । तृतीय अंक में दधि लीला और मान लीला के वर्णन में नन्दीपतिने मौलिकता एवं कुशलता प्रदर्शित करने का प्रयास अवश्य किया है किन्तु 'कालिय मथन' की ऊंचाई तक नहीं पहुंच पाये हैं । 'कालिय मथन'की उक्त दो लीलाओं के गीतों को पढ़ने से हमारी शृंगारिक भावना मात्र उद्बुद्ध ही नहीं होती अपितु उसकी रसानुभूति भी होती है । किन्तु इस नाटक के गीतों से रति भाव उद्बुद्ध मात्र होकर रह जाता है । अतएव इस रूप में भी नन्दीपति असफल हैं ।

५. गौरी परिणय --------

प्रस्तुत नाटक में भी पूर्व आलोचित नाटक के सदृश ही किसी पुराण का नहीं किन्तु परम्परा से प्रचलित लोक-कथा का ही आधार लिया गया है । उक्त नाटक की कथा को ही कवित्व शक्ति के आधार पर अन्य शब्दों में कहा गया है । कीर्तनियां नाम को सार्थक करते हुए इस नाटक में उसका पूर्ण विकसित रूप

प्रतिलक्षित होता है । रंगनिर्देश या क्रिया-कलापों के वर्णन में भी संस्कृत का प्रयोग वर्जित किया गया है । नाटक संपूर्णत: मैथिली गीतों में ही समाप्त होता है जिसमें ब्रजभाषा और हिन्दी का प्रभाव यत्र तत्र दृष्टि गोचर होता है ।

लोक-प्रचलित कथानक के अपनाये जाने के कारण इस नाटक में स्थानीय लोकाचारों की भी सुन्दर झांकी दृष्टिगत होती है । मिथिला में अपनी कुलीनता के आधार पर "बिकौआ" ब्राह्मण बुढ़ापे में भी षोड़सी से विवाह किया करता था । मैना के मुख से, शिव-पार्वती की अवस्था में अन्तर के कारण उस परम्परा पर एक गहरा व्यंग्य किया गया है ।[१] 'तिरहुति रिति मन मानी', 'बूढ़ वर कर वहु जानी', 'मैथिल लौकिक देखी', 'निज मन रोख उपेखी', 'परिछए चललि सखिगन', 'गेलि सखी लए साथ नाकधरि आनल', 'मांडव घुमाय उखरि लग राखल', 'कुटे अठोंगर साथ आठ जन आएल', 'कंगन तब बांधल', 'चलल कोबर शिवशंकर', 'रोकल गार दोआर', 'आंगुर धए चललि गौरि' आदि सभी मैथिली परम्पराओं एवं रूढ़ियों का ही, जन प्रियता और सम्पर्क के कारण, इस नाटक का ताना-बाना बुना गया है ।

इसके अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसकी रचना स्वान्त: सुखाय एवं जन साधारण में शिव-भक्ति के प्रचार-प्रसार के लिये ही की गई थी ।

---

१. प्रस्तुत नाटक की भूमिका, पृ.४

६. श्रीकृष्ण जन्म रहस्य --------

प्रस्तुत नाटक में अधिकांशत: जन साधारण में प्रचलित कथा की ही सहायता ली गई है । रंगनिर्देश तथा कहीं कहीं कथोपकथन में भी संस्कृत का व्यवहार पाया जाता है । कथानक का विकास विभिन्न गीतों के माध्यम से ही होता है । कथोपकथन में मैथिली-दोहों का प्रयोग इस नाटक की विशेषता और मुख्य आकर्षण है । कई गीतों में लयो, दीन्हों, कीन्हों, राए में (मैं) आदि मैथिलेतर भाषा के शब्दों के प्रयोग हुए हैं । कंस की राजनर्तकी के एक गीत में, मैथिली शैली में, जयदेव का अनुकरण किया गया है । वह गीत इस प्रकार है -----

मधुकर मनुलय मालति मनसिज सुखम पहाए ।
गायति तव गुणगौरव मनुपल मखिल सुखाए ।।

अवधारय मधु चंचलमतनु मान हृदयेन ।
ब्रज मधुसूदन मधि खलु विरहि निमिह सरसेन ।।

अधिवसमधि रस दायिनि सकलकला चतुरेषु ।
गुणमति भजु भवभूषण सविकार भ्रमरेषु ।।

आलोकयति शालिनि सपदि सदा नयनेन ।
सुहृदि निधाय समागमनुस्र तं शयनेन ।।

कुरु विकसित मति सुन्दर मानन मधिक सुखेन ।।
भवति विलासिनि हितमिह गणक ललित वयनेन ।।[१]

----

१. प्रस्तुत नाटक, पृ.८-६

इस समय के अन्य नाटकों के समान ही इस नाटक की रचना दरबारी वातावरण या नाट्यशैली की दृष्टि से न होकर शुद्ध भक्ति भाव एवं इसके प्रचार के लिये ही हुई ।

७. गौरी स्वयंवर -------

सम्पूर्ण नाटक के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसका नामकरण 'गौरी स्वयंवर' के स्थान पर 'गौरि परिणय' अधिक उपयुक्त हो सकता था । इसके आदि से अंत तक विभिन्न छन्द एवं भाषा में हिन्दी का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है । भये, कीन्ह, दीन्ह, लीन्ह, लिये, जहां, यहां, वहां, अब, जब, तब, करन लगि तप, चले, गये, बोली (भूतकाल), मैं, कहे, बैठे ध्यान लगाए, इन्ह दसा कया कहूं बयान, हम सदा मदन गुलाम, आदि शब्दों तथा वाक्यों का प्रयोग अनेक गीतों में हुआ है । इससे सिद्ध होता है कि मिथिलांचल में बहुत पूर्व से ही हिन्दी का आधिपत्य रहा है ।

प्रस्तुत नाटक में लेखक की नवीनता और मौलिकता अनेक बातों से लक्षित होती हैं । संस्कृत का पूर्ण बहिष्कार तो अन्य नाटकों के समान ही है किन्तु नवीनता या मौलिकता इस बात में है कि अन्य नाटकों की भांति इसके प्रारंभ में नान्दी श्लोक या मंगलाचरण नहीं है किन्तु इसके स्थान पर एक छन्द में, नाटक के पठन से लाभ तथा सज्जन एवं दुर्जन के हृदयों पर इसके भिन्न प्रभाव

पढ़ने का वर्णन किया गया है ।[१] गणेश और भगवती की वन्दना के पश्चात् कमला नदी की प्रार्थना की गई है । कमलानदी की वंदना अन्य किसी नाटककार ने नहीं की । अनन्तर लेखक स्वयं अपने परिवार का वर्णन करता है और नाटक की रचना तिथि और स्वरूप का भी उल्लेख करता है । अत: नाट्यकार के मत में प्रस्तुत नाटक विभिन्न श्लोकों एवं छन्दों में नृत्य नाटिका है ।[२]

कथा प्रसंगों के क्रमिक विन्यास में लेखक की चतुरता और मौलिक उद्भावनाएं निखार में आ जाती हैं । शिव-पार्वती-परिणय के प्रसंगों पर, पूर्व पृष्ठों पर विवेचित दो नाटकों से इसमें अनेक भिन्नताएं पायी जाती हैं जो नाट्यकार की मौलिकता की परिचायक हैं । प्रथम अन्तर तो यह है कि अन्य नाटकों में शिव को तपोवन में देखकर पार्वती मोहित हो जाती हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिये कठिन तपस्या करती हैं । इसके विपरीत प्रस्तुत नाटक में दो बार गौरी को तपस्या - रत दिखाया गया है । नारदने इनकी कुण्डली देखकर बताया कि इन्हें बूढ़े, दिगम्बर और भिखारी वर प्राप्त होंगे । ये सभी लक्षण महादेव में ही

---

१. पोथी गौरी स्वयंवर कान्हाराम बखान ।
गौरी शंकर करहि शुभ पढ़हि सुनहि मतिमान ।।
सज्जन जन कों परम प्रिय सुनहि बाढ़त हुलास ।
कुटिल मूढ़ अज्ञान जड़ सो करिहहि उपहास ।।

२. श्लोक सोरठा छन्द पुनि दोहा गीत कवित्त ।
मति अनुसार उचार करि नाम नाटिका नृत्य ।।
प्रस्तुत नाटक - पृ.६

घटित होते हैं । अतः उनकी प्राप्ति के लिये नारद से आदेशित होने पर ही पार्वती तपस्या करती हैं ।[१]

शिव संतुष्ट होकर उनका वर होना स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु जब वे कैलाश पर ध्यान मग्न बैठे हुये होते हैं तो उन्हें सती का स्मरण हो आता है और वे विह्वल होकर, पूर्व कथनों का परित्याग कर समाधिस्थ हो जाते हैं । ताड़कासुर के वध के लिये, देवताओं के अनुरोध पर, जब कामदेव रूद्र के हृदय को विचलित करने के लिये आता है तो वह अनेक त्रिनेत्र की ज्वाला से भस्म हो जाता है । इन घटनाओं के कारण निराश होकर पार्वती पुनः उनकी प्राप्ति के लिये तपस्या करती हैं ।

दूसरा अन्तर यह है कि प्रस्तुत नाटक में तपस्या-रत पार्वती की एकनिष्ठा की परीक्षा करने के लिये स्वयं शिव ब्रह्मचारी के वेष में नहीं जाते हैं किन्तु वे सप्तर्षियों को निवेदन करते हैं कि वे पार्वती के अनन्य प्रेम के परीक्षण के लिये जायें ।[२] ये सप्तर्षि भी पार्वती के दूसरीबार की तपस्या के अवसर पर जाते हैं । इनके

----

१. तुलनीय --
रामचरित मानस, बालकाण्ड ।
जोगि जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष ।
अस स्वामी एहि कंहु मिलिहि, परी हस्त असिरेख ।।
तदपि एक मैं कहउं उपाई । होइ करै जौं देउ सहाई ।।
जे जे बर के दोष बखाने । ते सब शिव पहि मैं अनुमाने ।।

२. तुलनीय वही -----
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए । बोले प्रभु अति वचन सुहाए ।।
पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु ।।

कटुवचनों का प्रतिकार करती हुई स्वयं पार्वती कहती हैं कि जल उपल में परिवर्तित हो सकता है किन्तु हर के कारण मेरी प्रीति छिन्न नहीं हो सकती है । विष्णु या अन्य देवों के गुणागार होने पर भी उनसे मुझे किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है । महेश की अवगुणागार मूर्ति ही मेरे हृदय में प्रतिष्ठित है ।[१] पार्वती की इस दृढ़ता से सप्तर्षियों को हार्दिक आनन्द होता है । वे त्रिपुर सुन्दरी की मंगल कामना करते हुए यह समाचार देने के लिये कैलास को प्रस्थान करते हैं ।

तीसरी भिन्नता इस बात में है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देव शिव की प्रार्थना करते हुये निवेदन करते हैं सतीने ही पार्वती के रूप में अवतार ग्रहण किया है । अतएव आप देवकल्याणार्थ उनसे अवश्य ही विवाह करें । देवों की प्रार्थना स्विकार कर शिव घटक के कार्य-सम्पादनार्थ सप्तर्षियों को हिमालय के घर भेजते हैं ।

चौथा अन्तर यह है कि महादेव के विकट वेष, वाहन और गणादि को देखकर पुरजनों को अवश्य विस्मय और आश्चर्य होता है और वे त्रिपुर सुन्दरी पार्वती के लिये अवश्य सहानुभूति प्रकट करते हैं किन्तु मैना की दृष्टि में इस विषमता का कुछ भी स्थान नहीं है । उनके हृदय में उमंग - उछाह की लहरें उठ रही हैं । वे अति

---

१. बोलि बिहुसि भवानी, मुनि हे, सुनिअ तोहि बड़ गानी ।
हेम उपल भए तारए, मुनि हे, हर न प्रति दुराए ।
अवगुन भरल मैहेसे, मुनि हे, तनि पद प्रीति हमे से ।
विष्णु गुननिधि धामे, मुनि हे, तनिक न मोहि किछु कामे ।
कान्हाराम कवि गावे, मुनि हे, सिव छाड़ि दोसर न भावे ।।
(पृ. २५)

उत्साह और प्रसन्नता के साथ लोगों को आमंत्रित कर रही हैं ; आगता नारियों में भूषण और वस्त्र बांट रही हैं । पार्वती की मांग में सिन्दूर देखने के लिये उनका हृदय लालायित हो रहा है ।[१] यह भावावेश और विह्वलता उचित भी है, क्योंकि जिस कोमलांगी त्रिपुर सुन्दरी पुत्री को कठिन तपश्चर्या के लिये भेजा था, उस साधना का मधुर फल आज प्राप्त हो रहा है । कठिन परिश्रम से प्राप्त फल के लिये उत्सुकता स्वाभाविक ही है । मैना को शिव के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान तो था ही और साथ ही उन्हीं की प्राप्ति के लिये उनकी दुहिता तपरत हैं, यह भी वे जानती थीं । अत: पूर्ण परिचित होने पर भी शिव की बारात को देखकर दुख से कातर हो जाना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता है ।

----

१. तुलनीय, मानस, बालकाण्ड -----

सत्य कोहहु गिरिभव तनु एहा । हर न छूट छूटै बरु देहा ।।
कनक कउ पुनि पषान तें होई । जारे हुं सहजु न परिहर सोई ।।
महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल गुन धाम ।
जेहिकर मनु रम जाहियन, तेहि तेहीसन काम ।।
मैना नगर हकारि नारि सब आव ए । हे ।
कोकिल बैन उचारि मंगल गीत गावए,
कौतुक देखि मनाइनि अवसर पावल । हे ।
दिव्य भूखन पट चीर सबहि पहिराओल,
सबक चित लागि रहल उदवेग अती । हे ।
करबन उमा सिर सिन्दूर मनाइनि देखती,
धरू धैरज मन लाए कान्हाराम कवि मन । हे ।
परसन हो एव महेस पुरत अभिमत मन ।हे । (पृ.४०)

दोनों ओर से लोगों को आमंत्रित किया जा रहा है । बारात सजती है और बिना किसी आडंबर के गौरी-शंकर का विवाह सम्पन्न हो जाता है । अन्य नाटकों की भांति इसमें अनावश्यक रूप से विधियों का वर्णन नहीं किया गया है ।

यद्यपि इस नाटक की कथावस्तु अधिकांशत: रामचरितमानस पर आधारित है, कहीं कहीं शब्दावलियों में भी साम्य दृष्टिगत होता है, फिर भी उपर्युक्त कथा प्रसंगों की उपयुक्तता से कान्हाराम की मौलिकता और नवीन उद्भावना स्पष्ट रूप में प्रकाश में आ जाती हैं । तीसरा और चौथा अन्तर लेखक की निजी मौलिकता प्रदर्शित करते हैं । रोचक किन्तु सरल रीति से कथा प्रसंगों के सहज विकास में नाट्यकार की कला-कुशलता भी नहीं लक्षित होती है । अतएव शिव संबंधी अनियमित कीर्तनियां नाटकों में इस नाटक का स्थान मूर्धन्य माना जा सकता है । प्रस्तुत नाटक के इतिवृत्त का वर्णन इस ढंग से किया गया है कि आसानी से दृश्य-विभाजन की योजना की जा सकती थी, किन्तु नाट्यकार ने ऐसा नहीं किया है । लेखकने प्रस्तावना में ही संकेत कर दिया है कि यह विभिन्न लयों में एक नृत्य नाटिका है । अतएव संभवत: नृत्य की अविच्छिन्नता बनाये रखने के लिये दृश्य-योजना नहीं की गई है । इंगलैंड[१] के एलिजाबेथ कालीन नाटकों में अंक या दृश्य का विभाजन स्वीकार नहीं किया गया । डा. मिश्रने इस नाटक की भूमिका में लिखा है कि हिन्दी शब्दों के प्रयोग से भाषा और पद विकृत हो गये हैं, किन्तु सत्य तो यह है कि इन शब्दों के प्रयोग से गीतों में स्वाभाविकता,

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ. ३४१

सरसता, लालित्य और मिठास, इन गुणों का समावेश अनायास ही हो गया है जिसका अनुभव कोई भी अध्येता कर सकता है ।

८. प्रभावती हरण --------

इसकी रचना नियमित कीर्तनियां शैली पर हुई है, अर्थात् कथोपकथन में संस्कृत-प्राकृत एवं गीतों में मैथिली का प्रयोग हुआ है । नाट्यकार विद्वान् है किन्तु प्रस्तुतत रचना में कहीं भी उसकी कुशलता दृष्टिगत नहीं होती । कई ऐसे प्रसंग उपस्थित हुये हैं जहां वह अपनी नाट्य कुशलता को आसानी से प्रदर्शित कर सकता था किन्तु उन स्थलों पर नाट्यकार पूर्ण असफल रहा है । संपूर्ण नाटक के अध्ययन से नाट्यकार का एक ही लक्ष्य प्रतीत होता है, वह है प्रासंगिक अथवा अप्रासंगिक रूप में शृंगार का वर्णन । इन शृंगारिक गीतों में भी नाट्यकारने विद्यापति और जयदेव के असफल अनुकरण का प्रयास किया है ।[१] इस नाटक की दो विशेषतायें लक्षित होती हैं---

---

१. (क) माधव कि कहब तनिक विशेषो ।
चिकुर निकर वेणिकृत लंबित देखल एहन अभिरामे ।
लोहित विन्दु सुरज समुदित जनि तिमिर पाकु परिणामे ।।
दशन वसन नीशा रद लोयन निरखि लागु अनरीति ।
बंधुकतील कुन्द सरसीरुह एकहि समय परतीती ।।
सरस मृणाल बाल चकवा युग शैवल गिरिवर कूले ।
सतत अमिज समयवचन सुसिंचित तैं नहि हो उनमूले ।। पृ.६
(ख) अमल कमल दल नयन विराजित वदनचन्द्र मनुवारम् ।
द्रवति चापि युवती यदि पश्यति बहति पंचशर भारम् ।।
हरि हरि यस्य वैरि बनिता जन नयनज कज्जाल नीरम् ।
चलति सदा यमुना जल तुल्य मितिस्मर भाविनि धीरम् ।।
पृ.११

(१) सूत्रधार का विशुद्ध जन नाटकीय स्वरूप, अर्थात् रंगमंच पर रहकर ही वह कथा-प्रसंगो के तारतम्य का निर्वाह करता रहता है ।
(२) एक ज्योतिषी को बिपटा (Joker) के रूप में उपस्थित कर मिथिला की जन नाटकीय पद्धति का निर्वाह किया गया है ।

डा. मिश्रने[१] प्रस्तुत रचना को ईहामृग कहना अधिक उपयुक्त माना है किन्तु रूपक के इस भेद के एक भी लक्षण का निर्वाह इस नाटक में प्राप्त नहीं होता है । (ईहामृग के नाम के संबंध में रामचन्द्रने कहा है कि "ईहा चेष्टा मृगस्येव स्त्रीमात्रार्थात्रे तीहामृग:" अर्थात् इसमें मृग के तुल्य किसी अलभ्य सुन्दरी की इच्छा नायक या प्रतिनायक करता है । इसके संबंध में धनंजय का मत है कि ईहामृग की कथा प्रख्यात और कल्पित होती है । देवता और नर के नियम से इसमें नायक और प्रतिनायक की योजना होती है तथा ये दोनों इतिहास प्रसिद्धि और धीरोदात्त एवं धीरोद्धत होते हैं । ये दोनों किसी दिव्य स्त्री को - जो इन्हें नहीं चाहती - अपहरण कर ले जाना चाहते हैं । इसको प्रदर्शित करने के लिये शृंगाराभास का वर्णन भी आवश्यक है । आवेश के कारण पूर्णतया युद्ध का प्रसंग उपस्थित होने पर भी किसी बहाने उसे टाल दिया जाना चाहिए ।[२]) इन लक्षणों का निर्वाह आंशिक रूप में भी प्रस्तुत नाटक में नहीं हुआ है । अतएव यह ईहामृग नहीं अपितु कीर्तनियां शैली का ही एक नाटक है ।

---

१. ए हिस्ट्री ओफ मैथिली लिट्रेचर, भाग १, पृ.३४८
२. दश रूपक ३।७२-७५

जगत् प्रकाश मल्ल कृत 'प्रभावती हरण' में जो आकर्षण और कुशलता है वह इसमें नहीं है। हंसी तथा प्रभावती के संभाषण को अत्यन्त स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हंसी अपने अनेक दिवसों के निवास के पश्चात् कीट-भृंग न्याय से प्रद्युम्न और प्रभावती के हृदयों में परस्पर अनन्य प्रेम को पल्लवित कर पाती है। इन दोनों प्रेमी हृदयों के शृंगार-भाव के दोनों पक्षों का वर्णन अत्यन्त हृदय-स्पर्शी है। नट का प्रसंग बहुत स्वाभाविक प्रतीत होता है। इन सब तथ्यों का विवेचन पूर्ववर्ती पृष्ठों पर किया जा चुका है। यह स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता प्रस्तुत प्रभावती हरण में दृष्टिगत नहीं होतीं।

निष्कर्ष --------

उपर्युक्त पर्यालोचना से यह तथ्य स्पष्टतः प्रकाश में आ जाता है कि कीर्तनियां नाटकों की धारा किन विविध रूपों को ग्रहण करती हुई प्रवहमान बनी रही। इस रूपको अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये जन-रुचि के अनुकूल अपने वेग को संतुलित रखना पड़ा। इस प्रयत्न के पश्चात् भी उसे ह्रास का ही सामना करना पड़ा। सतत् गतिमान युग-चक्र मृग तृष्णा में अग्रसर ही होता रहता है। वह कभी भी सिंहावलोकन करना पसन्द नहीं करता, क्योंकि समाज के रूढ़िवादिता एवं अदूर दर्शिता रूपी तीखे व्यंग्य वाणों का भय सतत् उसे बना रहता है। अतः चक्र वेग के अनुपात में युग की मान्यताएं और अवबोध की प्रणाली में भी परिवर्तन होता ही रहता है। कीर्तनियां शैलीने जिस जनरूचि का इतना ध्यान रखा, अति परिचयात् अवज्ञा के अनुसार उसी के कारण इसे पराभूत भी होना पड़ा। इस शैली के पराभव का एक अन्य कारण यह भी है कि जनप्रियता के लोभ के कारण तत्काल के नाट्यकारों में मौलिकता का

अभाव हो गया । वे लोग पूर्ववर्ती लेखकों के असफल अनुकरण के आधार पर अश्लील शृंगारिक गीतों के माध्यम से दर्शकों के मनोरंजन करने में ही अपनी सफलता समझने लगे । यदि इन नाट्यकारोंने पौराणिक कथा के माध्यम से ही समसामयिका समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया होता तो इस रूप का ह्रास प्रायः नहीं हो पाता । इन्हीं कारणों से अवसर वादी समाजने इसका परित्याग कर नये रूपों को ग्रहण करना प्रारंभ किया जिनमें वह अपनी समस्याओं का निराकरण ढूंढ सकता था । इसके इस ह्रास के पश्चात् भी आधुनिक युग के दो-चार विद्वानोंने इसी शैली पर रचना प्रस्तुत की जिसकी विवेचना परवर्ती अध्याय में की जायेगी ।

---000---